34

उच्च न्यायालय (High Court)

भारत की एकल समेकित न्यायिक व्यवस्था में उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय से नीचे लेकिन अधीनस्थ न्यायालयों के ऊपर कार्य करता है। एक राष्ट्र की न्यायपालिका में एक उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों का एक पद सोपान होता है। राज्य के न्यायिक प्रशासन में उच्च न्यायालय की स्थिति शीर्ष पर होती है।

भारत में उच्च न्यायालय संस्था का सर्वप्रथम गठन 1862 में तब हुआ, जब कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों[1] की स्थापना हुई। 1866 में, चौथे उच्च न्यायालय की स्थापना इलाहाबाद में हुई। कालक्रम में ब्रिटिश भारत में प्रत्येक प्रांत का अपना उच्च न्यायालय बन गया। 1950 के बाद प्रान्त का उच्च न्यायालय संबंधित राज्य का उच्च न्यायालय बन गया।

भारत के संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है लेकिन सातवें संशोधन अधिनियम, 1956 में संसद को अधिकार दिया गया कि वह दो या दो से अधिक राज्यों एवं एक संघ राज्य क्षेत्र के लिए एक साझा उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकती है।

इस समय देश में 24 उच्च न्यायालय हैं।[2] इनमें से चार साझा उच्च न्यायालय हैं। केवल दिल्ली ऐसा संघ राज्य क्षेत्र है, जिसका अपना उच्च न्यायालय (1966 से) है। अन्य संघ राज्य क्षेत्र विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायिक क्षेत्र में आते हैं। संसद एक उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र का विस्तार, किसी संघ राज्य क्षेत्र में कर सकती है अथवा किसी संघ राज्य क्षेत्र को एक उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र से बाहर कर सकती है।

सभी 24 उच्च न्यायालयों के नाम, स्थापना का वर्ष, न्यायिक क्षेत्र और स्थान (पीठ या पीठों सहित) का विवरण इस पाठ के अंत में तालिका संख्या 34.1 में दिया गया है।

संविधान के भाग छह में अनुच्छेद 214 से 231 तक उच्च न्यायालयों के गठन, स्वतंत्रता, न्यायिक क्षेत्र, शक्तियां, प्रक्रिया आदि के बारे में बताया गया है।

उच्च न्यायालय का संगठन

प्रत्येक उच्च न्यायालय (चाहे वह अनन्य हो या साझा) में एक मुख्य न्यायधीश और उतने अन्य न्यायधीश, जितने आवश्यकतानुसार समय-समय पर राष्ट्रपति नियुक्त करते हैं, होते हैं। इस तरह संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या के बारे में विशेष तौर पर कुछ नहीं बताया गया है। इसे राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है। तद्नुसार, राष्ट्रपति कार्य की आवश्यकतानुसार समय-समय पर इनकी संख्या निर्धारित करते हैं।

न्यायाधीश

न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, भारत के मुख्य न्यायधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के बाद की जाती है। अन्य न्यायधीशों की नियुक्ति में संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश से भी परामर्श किया जाता है। दो या अधिक राज्यों के साझा उच्च न्यायालय में नियुक्ति में राष्ट्रपति सभी संबंधित राज्यों के राज्यपालों से भी परामर्श करता है।

द्वितीय न्यायाधीश मामले (1993)[3] में उच्चतम न्यायालाय ने व्यवस्था दी थी कि तब तक उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की नियुक्ति नहीं की जा सकती, जब तक वह राय के अनुरूप न हो। *तीसरे न्यायाधीश मामले* (1998)[4] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति पर उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को दो वरीयतम न्यायाधीशों से परामर्श करना चाहिए। इस प्रकार, अकेले भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय से परामर्श प्रक्रिया पूरी नहीं होगी।

99वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 तथा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम 2014 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए कार्यरत कॉलेजियम सिस्टम को एक नये निकाय राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) से प्रतिस्थापित किया गया है। हालांकि 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने 99वें संविधान संशोधन तथा एनजेएसी एक्ट, दोनों को असंवैधानिक घोषित कर दिया है। परिणामत: पुराना कौलेजियम सिस्टम पुन: अस्तित्व में है। यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय ने फोर्थ जजेज केस[4a] (2015) में दिया। कोर्ट ने राय व्यक्त की कि नयी व्यवस्था, यानी एनजेएसी न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रभावित करेगी।

न्यायाधीशों की योग्यताएं

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए व्यक्ति के पास निम्न योग्यताएं होनी चाहिये:

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. (अ) उसे भारत के न्याययिक कार्य में 10 वर्ष का अनुभव हो, अथवा
   (ब) वह उच्च न्यायालय (या न्यायालयों) में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए कोई न्यूनतम आयु सीमा निर्धारित नहीं की गई है। इसके अतिरिक्त सांविधान में उच्चतम न्यायालय के विपरीत प्रख्यात न्यायविदों को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने का कोई प्रावधान नहीं है।

शपथ अथवा प्रतिज्ञान

जिस व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया है, पद संभालने से पूर्व उसे इस राज्य के राज्यपाल या इस कार्य के लिए उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के सामने शपथ/निम्नलिखित प्रतिज्ञान करना होता है। अपनी शपथ में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश शपथ लेता है :

1. भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा पालन करेगा।
2. भारत की प्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
3. सम्यक प्रकार और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करेगा।
4. संविधान और विधि की मर्यादा बनाए रखेगा।

न्यायाधीशों का कार्यकाल

संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल निर्धारित किया गया नहीं है। तथापि, इस संबंध में चार प्रावधान किये गये हैं:

1. 62 वर्ष की आयु तक पद पर रहता है।[5] उसकी आयु के संबंध में किसी भी प्रश्न का निर्णय राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करता है। इस संबंध में राष्ट्रपति का निर्णय अंतिम होता है।
2. वह, राष्ट्रपति को त्यागपत्र भेज सकता है।
3. संसद की सिफारिश से राष्ट्रपति उसे पद से हटा सकता है।
4. उसकी नियुक्ति उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में हो जाने पर या उसका किसी दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण हो जाने पर वह पद छोड़ देता है।

न्यायाधीशों को हटाना

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को राष्ट्रपति के आदेश से पद से जा सकता है। राष्ट्रपति न्यायधीश को हटाने का आदेश संसद द्वारा उसी सत्र में पारित प्रस्ताव के आधार पर ही जारी कर सकता है। प्रस्ताव को विशेष बहुमत के साथ संसद के प्रत्येक सदन का समर्थन (इस प्रस्ताव को उस सदन के कुल सदस्यों के बहुमत का समर्थन और उस सदन में मौजूद और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई का समर्थन) मिलना आवश्यक है। हटाने के दो आधार सिद्ध कदाचार और अक्षमता। इस तरह, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की तरह ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उसी प्रक्रिया और आधारों पर हटाया जा सकता है।

न्यायाधीश जांच अधिनियम (1968) में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा हटाने के निम्नलिखित नियम हैं :

1. 100 सदस्यों (लोकसभा), अथवा 50 सदस्यों (राज्यसभा) के हस्ताक्षरित हटाने का प्रस्ताव अध्यक्ष/सभापति को सौंपना होगा।
2. अध्यक्ष/सभापति प्रस्ताव को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकता है।
3. यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो अध्यक्ष/सभापति आरोपों की जांच के लिए तीन सदस्यीय समिति गठित करेगा।
4. समिति में (अ) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या कोई न्यायाधीश (ब) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और (स) एक प्रख्यात न्यायविद् होने चाहिए।
5. यदि समिति यह पाती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी है या अयोग्य है तो सदन प्रस्ताव पर विचार कर सकता है।
6. संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से प्रस्ताव पास होने के बाद न्यायाधीश को हटाने के लिए इसे राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है।
7. अंततः न्यायाधीश को हटाने के लिए राष्ट्रपति आदेश पारित कर देते हैं।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पर महाभियोग की प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान ही है।

यह रोचक है कि अब तक उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश पर महाभियोग नहीं लगाया गया है।

वेतन एवं भत्ते

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का वेतन, भत्ते, सुविधाएं, अवकाश और पेंशन को समय-समय पर संसद द्वारा निर्धारित किया जाता है। उनकी नियुक्ति के बाद, सिवाय वित्तीय आपातकाल के उनमें कोई कमी नहीं की जा सकती। 2009 में मुख्य न्यायाधीश का वेतन 30,000 से बढ़ाकर 90,000 रुपये प्रतिमाह एवं अन्य न्यायाधीशों का 26000 रुपये से बढ़ाकर 80,000 रुपये प्रतिमाह कर दिया गया है।[6] उन्हें सत्कार भत्ता और निःशुल्क आवास तथा अन्य सुविधाएं, जैसे—चिकित्सा, कार, टेलीफोन आदि भी प्रदान की जाती है।

सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीश उनके द्वारा आहरित अंतिम माह के वेतन का 50 प्रतिशत प्रतिमाह पेंशन पाने के हकदार हैं।

न्यायाधीशों का स्थानांतरण

भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श के बाद राष्ट्रपति एक न्यायाधीश का स्थानांतरण एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में कर सकता है। स्थानांतरण पर यह वेतन, के अतिरिक्त ऐसे प्रतिपूरक भत्तों का हकदार है, जो संसद द्वारा निर्धारित किए जाएं।

1977 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि न्यायाधीशों का स्थानांतरण केवल अपवादस्वरूप और लोक कल्याण को ध्यान में रखकर ही किया न कि दंड के रूप में। दोबारा 1994 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि न्यायाधीशों के स्थानांतरण में मनमानी रोकने के लिए न्यायिक समीक्षा जरूरी है लेकिन वही न्यायाधीश इस मामले को चुनौती दे सकता है जिसे स्थानांतरित किया गया है।

तृतीय न्यायाधीश मामले (1998) में उच्चतम न्यायालय ने राय दी कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्थानांतरण मामले में भारत के मुख्य न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों, दो उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों (एक वहां के, जहां से न्यायाधीश का स्थानांतरण हो रहा है, एक वहां के, जहां वह जा रहा हो) परामर्श करना चाहिए। इस तरह एकमात्र भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय से ही परामर्श प्रक्रिया पूरी नहीं होती है।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

राष्ट्रपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है, जबः

1. उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो, या
2. उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अस्थायी रूप से अनुपस्थित हो, या
3. यदि मुख्य न्यायाधीश अपने कार्य निर्वहन में अक्षम हो।

अतिरिक्त और कार्यकारी न्यायाधीश

राष्ट्रपति निम्नालिखित परिस्थितियों में योग्य व्यक्तियों को उच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्यायाधीशों के रूप में अस्थायी रूप से नियुक्त कर सकते हैं, जिसकी अवधि और दो वर्ष से अधिक की नहीं होगी:

1. यदि अस्थायी रूप से उच्च न्यायालय का कामकाज बढ़ गया हो, या
2. उच्च न्यायालय में बकाया कार्य अधिक है।

राष्ट्रपति उस स्थिति में भी योग्य व्यक्तियों को किसी उच्च न्यायालय का कार्यकारी न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है जब उच्च न्यायालय का न्यायाधीश (मुख्य न्यायाधीश के अलावा):

1. अनुपस्थिति या अन्य कारणों से अपने कार्यों का निष्पादन करने में असमर्थ हो,
2. किसी न्यायाधीश को अस्थायी तौर पर संबंधित उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया हो।

एक कार्यकारी न्यायाधीश तब तक कार्य करता है, जब तक कि स्थायी न्यायाधीश अपना पदभार न संभालें। हालांकि अतिरिक्त या कार्यकारी न्यायाधीश 62 वर्ष की उम्र से के पश्चात पद पर नहीं रह सकता।

सेवानिवृत्त न्यायाधीश

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश किसी भी समय उस उच्च न्यायालय अथवा किसी अन्य उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को अस्थायी अवधि के लिए बतौर कार्यकारी न्यायाधीश काम करने के लिए कह सकते हैं। वह ऐसा राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति एवं संबंधित व्यक्ति की मंजूरी के बाद ही कर सकता है। ऐसे न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा तय भत्तों का अधिकारी होता है। उसे उस उच्च न्यायालय के सभी न्यायिक क्षेत्र, शक्तियां एवं सुविधाएं और विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, लेकिन अन्यथा वह उस उच्च न्यायालय का न्यायाधीश माना जाएगा।

उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता

उच्च न्यायालय को सौंपे गए कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता अत्यंत आवश्यक है। इसे (कार्यपालिका मंत्रिपरिषद के) अतिक्रमण, दबाव, हस्तक्षेप से मुक्त होना चाहिए। उसे बिना डर व पक्षपात के न्याय करने की छूट होनी चाहिए।

संविधान में उच्च न्यायालय के निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए निम्नलिखित उपबंध किए गए हैं:

1. **नियुक्ति की विधि:** उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा (अर्थात कैबिनेट) स्वयं न्यायपालिका के सदस्यों (अर्थात् भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश) के परामर्श से की जाती है। यह उपबंध कार्यपालिका के पूर्णत: विवेकाधीन में कमी करने और यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि न्यायिक नियुक्तियों में राजनैतिक अथवा व्यवहारिक पक्षपात न हो।
2. **कार्यकाल की सुरक्षा:** उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की जाती है। उनको संविधान में उल्लिखित विधि और आधारों पर सिर्फ राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि वे केवल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पर नहीं रहते, यद्यपि उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि अब तक किसी उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायधीश को हटाया (महाभियोग लगाया) नहीं गया है।
3. **निश्चित सेवा शर्तें:** उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन, भत्ते, विशेषाधिकारों, अवकाश एवं पेन्शन का निर्धारण समय-समय पर संसद द्वारा किया जाता है। लेकिन उनकी नियुक्ति के बाद सिवा वित्तीय आपातकाल इनमें कमी नहीं की जा सकती। इस तरह उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा-शर्तें उसके कार्यकाल तक यथावत रहती हैं।
4. **संचित निधि पर भारित व्यय:** न्यायाधीश एवं स्टाफ के वेतन एवं भत्ते पेन्शन और उच्च न्यायालय का प्रशासनिक खर्चा संबंधित राज्य की संचित निधि पर भारित होते हैं। इस तरह राज्य विधानमंडल में इस पर

कोई मतदान नहीं हो सकता है। ध्यान देने योग्य बात है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की पेंशन भारत की संचित निधि से दी जाती है, न कि राज्य की संचित निधि से।

5. **न्यायाधीशों के कार्य पर चर्चा नहीं की जा सकती:** संविधान एक उच्च न्यायालय के न्यायधीश के आचरण पर संसद अथवा राज्य विधानमंडल में चर्चा पर प्रतिबंध लगाता है सिवाय उस स्थिति के जब संसद में महाभियोग प्रस्ताव विचाराधीन हो।

6. **सेवानिवृत्ति के बाद वकालत पर प्रतिबंध:** उच्च न्यायालय का सेवानिवृत स्थायी न्यायाधीश भारत में उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के अलावा किसी भी न्यायालय में अथवा प्राधिकारी के सामने बहस अथवा कार्य नहीं कर सकता। इससे यह सुनिश्चित होता है कि वे भविष्य में किसी लाभ की आशा से किसी के साथ पक्षपात न करें।

7. **अपनी अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति:** उच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति को अपनी अवमानना के लिए दंड दे सकता है। इस प्रकार, कोई भी इसके कार्यों और निर्णयों की आलोचना या विरोध नहीं होकर सकता। यह शक्ति उच्च न्यायालय के प्राधिकार, गरिमा और उसके सम्मान को बनाए रखने के लिए दी गई है।

8. **अपने कर्मचारियों की नियुक्ति की स्वतंत्रता:** उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों की उच्च न्यायालय में बिना कार्यपालिका के हस्तक्षेप के नियुक्ति कर सकता है। वह उनकी सेवा शर्तें भी तय कर सकता है।

9. **इसके न्यायिक क्षेत्र में कटौती नहीं की जा सकती:** उच्च न्यायालय की संवधिान में उल्लेखित न्यायिक क्षेत्र और न्यायिक शक्तियों को न तो संसद द्वारा और न ही राज्य विधानमंडल द्वारा कम किया जा सकता है। लेकिन अन्य मामलों में इसके न्यायिक क्षेत्र एवं शक्ति को संसद एवं विधानमंडल द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।

10. **कार्यपालिका से पृथक्करण:** संविधान राज्यों को निर्देशित करता है कि लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग रखने के लिए कदम उठाए जाएं। इसका अर्थ है कि कार्यपालिका प्राधिकारियों को न्यायिक शक्तियां नहीं रखनी चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, इसके क्रियान्वयन पर न्यायिक प्रशासन में कार्यपालिका प्राधिकारियों की भूमिका समाप्त हो गई।[7]

उच्च न्यायालय का न्याय क्षेत्र एवं शक्तियां

उच्चतम न्यायालय की तरह ही उच्च न्यायालय को भी व्यापक एवं प्रभावी शक्तियां दी गई हैं। यह राज्य में अपील करने का सर्वोच्च न्यायालय होता है। यह नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक होता है। इसके पास संविधान की व्याख्या करने का अधिकार होता है। इसके अलावा, इसकी पर्यवेक्षक एवं सलाहकार की भूमिका होती है।

यद्यपि, संविधान में उच्च न्यायालय की शक्तियों एवं क्षेत्राधिकारके बारे में विस्तृत उपबंध नहीं किए गये हैं। इसे संविधान में त्वरित न्यायाधिकरण की तरह बताया गया है। इसमें केवल इतना कहा गया है कि एक उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शकियां वहीं होंगी जो संविधान के लागू होने से तुरंत पूर्व थी, लेकिन एक चीज और जोड़ी गई है, वह है राजस्व मामलों पर उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार (जो संविधान-पूर्व काल में इसके पास नहीं था)। संविधान में उच्च न्यायालय को कुछ अतिरिक्त शक्तियां, अन्य उपबंधों के द्वारा जैसे-न्यायादेश, पर्यवेक्षण की शक्ति, परामर्श की शक्ति आदि भी दी गई है। इसके अलावा यह संसद और राज्य विधानमंडल को उच्च न्यायालयों की शक्तियां एवं न्यायिक क्षेत्र के परिवर्तन की शक्तियां देता है।

वर्तमान में उच्च न्यायालयों को निम्नलिखित न्यायिक क्षेत्र और शक्तियां प्राप्त हैं:

1. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार,
2. न्यायादेश (रिट) क्षेत्राधिकार,
3. अपीलीय क्षेत्राधिकार,
4. पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार,
5. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण,
6. अभिलेख का न्यायालय,
7. न्यायिक समीक्षा की शक्ति।

उच्च न्यायालय के वर्तमान क्षेत्राधिकारों एवं शक्तियों पर (i) संवैधानिक उपबंध (ii) एकत्व अभिलेख (iii) संसद के अधिनियम (iv) राज्य विधानमंडल के अधिनियम (v) भारतीय दंड संहिता 1860 (vi) आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 और (vii) नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908।

1. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

इसका अर्थ है उच्च न्यायालय की विवादों की प्रथम दृष्टया सुनवाई सीधे, न कि अपील के जरिए, करने का अधिकार है, यह निम्नलिखित मामलों में विस्तारित है:

(a) अधिकारिता का मामला, वसीयत, विवाह, तलाक, कंपनी कानून एवं न्यायालय की अवमानना।

(b) संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडल सदस्यों के निर्वाचन संबंधी विवाद।

(c) राजस्व मामले या राजस्व संग्रहण के लिए बनाए गए किसी अधिनियम अथवा आदेश के संबंध में।

(d) नागरिकों के मूल अधिकारों का प्रवर्तन।

(e) संविधान की व्याख्या के संबंध में अधीनस्थ न्यायालय से स्थानांतरित मामलों में।

(f) उच्च महल, के मामलों में चार उच्च न्यायालयों (कलकत्ता, बंबई, मद्रास और दिल्ली उच्च न्यायालय) के मूल नागरिक क्षेत्राधिकार हैं।

1973 से पूर्व कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों के पास मूल आपराधिक न्यायिक क्षेत्र थे। इनका आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 द्वारा पूरी तरह निरसन कर दिया गया।

2. रिट क्षेत्राधिकार

संविधान का अनुच्छेद 226 एक उच्च न्यायालय को नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन और अन्य किसी उद्देश्य के लिए-बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, प्रतिषेध एवं अधिकार प्रेच्छा। किसी अन्य उद्देश्य के लिए पद का अर्थ है एक सामान्य कानूनी अधिकार का प्रवर्तन। यदि न्यायादेश देने का कारण इसके क्षेत्राधिकार राज्यक्षेत्र की सीमाओं में है तो उच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति, प्राधिकरण और सरकार को अपने क्षेत्राधिकार के राज्यक्षेत्र की सीमाओं के अदर बल्कि इसके बाहर भी ऐसा न्यायादेश दे सकता है[8]।

उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 226 के अंतर्गत) अनन्य न होकर उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 32 के तहत) समवर्ती है। इसका तात्पर्य है कि जब किसी नागरिक के मूल अधिकार का हनन होता है तो पीड़ित व्यक्ति का अधिकार है कि वह या तो उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय सीधे जा सकता है। यद्यपि उच्च न्यायालय का इस संबंध में न्यायिक क्षेत्र में उच्चतम न्यायालय से ज्यादा विस्तारित है। ऐसा इसलिए क्योंकि उच्चतम न्यायालय सिर्फ मूल अधिकारों के प्रवर्तन संबंधी आदेश दे सकता है न कि किसी अन्य प्रयोजन के लिए अर्थात् इसका विस्तार ऐसे मामले में नहीं जहां एक सामान्य कानूनी अधिकार के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है।

चंद्रकुमार मामले (1997)[9] में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार संविधान के मूल ढांचे के अंग है। इसका तात्पर्य है कि संविधान संशोधन के जरिए भी इसमें कुछ जोड़ा या घटाया नहीं जा सकता।

3. अपीलीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय मूलत: एक अपीलीय न्यायालय है। यहां इसके राज्य क्षेत्र के तहत आने वाले अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों के विरुद्ध अपील की सुनवाई होती है। यहां दोनों तरह के सिविल एवं आपराधिक मामलों के, बारे में अपील होती है। इस प्रकार अपीलीय क्षेत्राधिकार में उच्च न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र इसके मूलन्यायिक क्षेत्र से ज्यादा विस्तृत है।

(अ) दीवानी मामले

इस संबंध में उच्च न्यायालय का न्यायादेश निम्नानुसार है:

(i) जिला न्यायालयों, अतिरिक्त जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों और निर्णयों को प्रथम अपील के लिए कानून और तथा दोनों प्रकार के प्रश्नों के लिए सीधे उच्च न्यायालय में लाया जा सकता है यदि परिमाण निर्धारित सीमा से अधिक है।

(ii) जिला न्यायालयों एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों और निर्णय के विरुद्ध दूसरी अपील जिसमें कानून का प्रश्न हो (तथ्यों का नहीं)।

(iii) कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालय में अंत:-न्यायालीय अपील का प्रावधान है। जब उच्च न्यायालय का कोई एक न्यायाधीश मामले पर निर्णय देता है (उच्च न्यायालय के मूल या अपीलीय क्षेत्राधिकार के तहत)।

ऐसे मामले में निर्णय उसी न्यायालय की खंड पीठ में हो सकता है।

(iv) प्रशासनिक एवं अन्य अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय की खंड पीठ के सामने की जा सकती है। 1997 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि ये अधिकरण उच्च न्यायालय के न्यायादेश क्षेत्राधिकार के विषयाधीन हैं। परिणामस्वरूप किसी पंचायत के फैसले के खिलाफ पीड़ित व्यक्ति बिना पहले उच्च न्यायालय गए सीधे उच्चतम न्यायालय में नहीं जा सकता।

(ब) आपराधिक मामले

उच्च न्यायालय का आपराधिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार निम्नलिखित है:

(i) सत्र न्यायालय और अतिरिक्त सत्र न्यायालय के निर्णय के खिलाफ उच्च न्यायालय में तब अपील की जा सकती है जब किसी को सात साल से अधिक सजा हुई हो। यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि सत्र न्यायालय या अतिरिक्त सत्र न्यायालय द्वारा दी गई सजा-ए-मौत (आमतौर पर मृत्यु दंड के रूप में जाना जाने वाला) पर कार्रवाई से पहले उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की जानी चाहिए। चाहे सजा पाने वाले व्यक्ति ने कोई अपील की हो या न की हो।

(ii) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) में कुछ मामलों में उल्लिखित सहायक सत्र न्यायाधीश, नगर दंडाधिकारी या अन्य दंडाधिकारी (न्यायिक) के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

4. पर्यवेक्षीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय को इस बात का अधिकार है कि वह अपने क्षेत्राधिकार के क्षेत्र के सभी न्यायालयों व सहायक न्यायालयों के क्रियाकलापों पर नजर रखे (सिवाय सैन्य न्यायालयों और अभिकरणों के)। इस प्रकार वह:

(अ) मामले वहां से स्वयं के पास मंगवा सकता है।

(ब) सामान्य नियम तैयार और जारी कर सकता है, और उनके प्रयोग और कार्यवाही को नियमित करने के लिए प्रपत्र निर्धारित कर सकता है।

(स) उनके द्वारा रखे जाने वाले लेखा, सूची आदि के लिए प्रपत्रनिधरिता कर सकता है।

(द) शेरिफ, क्लर्क, अधिकारी एवं वकीलों के शुल्क आदि निश्चित करता है।

पर्यवेक्षण के मामले में उच्च न्यायालय की शक्तियां बहुत व्यापक हैं क्योंकि (i) यह सभी न्यायालयों एवं सहायकों पर विस्तारित होता है चाहे वे उच्च न्यायालय में अपील के क्षेत्राधिकार में हो या न हों, (ii) इसमें न केवल प्रशासनिक पर्यवेक्षण बल्कि न्यायिक पर्यवेक्षण भी शामिल है, (iii) यह पुनर्व्याख्याखित न्यायिक क्षेत्र है, और (iv) स्वयंसंज्ञान ले सकता है, किसी पक्ष द्वारा प्रार्थनापत्र आवश्यक नहीं है।

तथापि यह शक्ति उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों और अधिक्रमणों के ऊपर असीमिति अधिकार नहीं देती। यह एक असाधारण शक्ति है और इसलिए इसका प्रयोग केवल कभी कभार और आवश्यक मामलों में ही किया जाना चाहिए। सामान्यत: यह (i) क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण (ii) नैसर्गिक न्याय का घोर उल्लंघन (iii) विधि की त्रुटि (iv) उच्चतर न्यायालयों की विधि के प्रति असम्मान (v) अनुचित निष्कर्ष, और (vi) प्रकट अन्याय तक सीमित होती है।

5. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण

अधीनस्थ न्यायालयों पर एक उच्च न्यायालय के अपीलीय न्यायिक क्षेत्र एवं पर्यवेक्षणीय अधिकारों, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, के अलावा, प्रशासनिक नियंत्रण और अन्य शक्तियां रहती हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

(अ) जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, तैनाती और पदोन्नति, एवं व्यक्ति की राज्य न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों से अलग) में नियुक्ति में राज्यपाल इससे परामर्श लेता।

(ब) यह राज्य की न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों के अलावा), के तैनाती स्थानांतरण, सदस्यों के अनुशासन, अवकाश स्वीकृति, पदोन्नति आदि मामलों को भी देखता है।

(स) यह अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले को वापस ले सकता है, यदि उसमें महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न शामिल हो और संविधान की व्याख्या की आवश्यकता हो। यह या तो इस मामले को निपटा सकता है या अपने निर्णय के साथ मामले को संबंधित न्यायालय को लौटा सकता है।

तालिका 34.1 *उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र एवं नाम*

नाम		स्थापना का वर्ष	न्यायिक क्षेत्र	सीट
1.	इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद (लखनऊ में बेंच)
2.	हैदराबाद[17]	1954	आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना	हैदराबाद
3.	बंबई[13]	1862	महाराष्ट्र, गोवा, दादरा और नागर हवेली	मुंबई (नागपुर, पणजी और औरंगाबाद में खंडपीठ)
4.	कलकत्ता[13]	1862	पश्चिम बंगाल तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	कोलकाता (पोर्ट ब्लेयर में भ्रमणकारी खंडपीठ)
5.	छत्तीसगढ़	2000	छत्तीसगढ़	बिलासपुर
6.	दिल्ली	1966	दिल्ली	दिल्ली
7.	गुवाहाटी	1948[10]	असम, नागालैंड, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश[14]	गुवाहाटी (कोहिमा, आइजॉल, और इटानगर में खंडपीठ)
8.	गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
9.	हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिमला
10.	जम्मू एवं कश्मीर	1928	जम्मू एवं कश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
11.	झारखंड	2000	झारखंड	रांची
12.	कर्नाटक	1884[11]	कर्नाटक	बंगलुरु
13.	केरल	1958	केरल और लक्षद्वीप	एर्णाकुलम
14.	मध्य प्रदेश	1956	मध्य प्रदेश	जबलपुर (इंदौर और ग्वालियर में खंडपीठ)
15.	मद्रास[13]	1862	तमिलनाडु और पुडुचेरी	चेन्नई
16.	मणिपुर[15]	2013	मणिपुर	इम्फाल
17.	मेघालय[15]	2013	मेघालय	शिलांग
18.	उड़ीसा[16]	1948	ओडिशा	कटक
19.	पटना	1916	बिहार	पटना
20.	पंजाब और हरियाणा	1875[12]	पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़	चंडीगढ़
21.	राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर (जयपुर में खंडपीठ)
22.	सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक
23.	त्रिपुरा[15]	2013	त्रिपुरा	अगरतला
24.	उत्तराखण्ड	2000	उत्तराखण्ड	नैनीताल

(द) जैसे उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून को मानने के लिए भारत के सभी न्यायालय बाध्य होते हैं, उसी प्रकार इसके कानून को उन सभी अधीनस्थ न्यायालयों को मानने की बाध्यता होती है, जो उसके न्यायिक क्षेत्र में आते हैं।

6. अभिलेख न्यायालय

अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के पास दो शक्तियां हैं:

(अ) उच्च न्यायालय के फैसले, कार्यवाही और कार्य शाश्वत स्मृति और परिसाक्ष्य के लिए रखे जाते हैं। इन अभिलेखों को साक्ष्य के तौर पर रखा जाता है और अधीनस्थ न्यायालयों में कार्यवाही के समय इन पर सवाल नहीं उठाए जा सकते। इन्हें कानूनी परंपराओं और संदर्भों की तरह माना जाता है।

(ब) इसे न्यायालय की अवमानना पर साधारण कारावास या आर्थिक दंड या दोनों प्रकार के दंड देने का अधिकार है।

न्यायालय की अवमानना पद को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। हालांकि न्यायालय की अवहेलना अधिनियम 1971 में इसे परिभाषित किया गया है। इसके तहत अवहेलना दीवानी अथवा आपराधिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। सिविल अवमानना का अर्थ है एक न्यायालय के किसी भी निर्णय, आदेश, न्यायादेश अथवा अन्य प्रक्रिया का जानबूझकर पालन न करना। आपराधिक अवहेलना का मतलब है किसी मामले का प्रकाशन या ऐसी कार्यवाही (i) न्यायालय के प्राधिकार को कलंकित अथवा कम करना (ii) न्यायिक कार्यवाही के प्रति दुराग्रह अथवा उसमें हस्तक्षेप (iii) किसी अन्य प्रकार से न्यायिक प्रशासन में अवरोध अथवा हस्तक्षेप।

हालांकि निर्दोष प्रकाशन एवं कुछ मामलों का वितरण, न्यायिक कार्यवाही की सही रपट, उचित एवं वाजिब न्यायिक आलोचना, कार्यवाही, प्रतिक्रिया आदि न्यायालय की अवहेलना नहीं है।

अभिलेख न्यायालय के रूप में, एक उच्च न्यायालय किसी मामले के संबंध में दिये गये अपने स्वयं के आदेश अथवा निर्णय की समीक्षा की और उसमें सुधार की शक्ति भी उसे प्राप्त है। यद्यपि इस संबंध में संविधान द्वारा इसे कोई विशिष्ट शक्ति प्रदान नहीं की गयी है। दूसरी ओर, उच्चतम न्यायालय को संविधान ने विशिष्ट रूप से अपने निर्णयों की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान की है।

7. न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति राज्य विधानमंडल व केंद्र सरकार दोनों के अधिनियमनों और कार्यकारी आदेशों की संवैधानिकता के परीक्षण के लिए है। यदि वे संविधान का उल्लंघन करने वाले (अधिकारिता) हैं तो उन्हें असंवैधानिक और सामान्य (शून्य) घोषित किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, सरकार उन्हें लागू नहीं कर सकती।

यद्यपि न्यायिक समीक्षा पदांश का प्रयोग संविधान में कहीं भी नहीं किया गया है लेकिन अनुच्छेद 13 और 226 में उच्च न्यायालय द्वारा समीक्षा के उपबंध स्पष्ट हैं। संवैधानिक वैधता के मामले में विधायी अधिनियमनों अथवा कार्यपालिका के आदेशों को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी जा सकती है:

(अ) मौलिक अधिकारों का हनन (भाग तीन)

(ब) जिस प्राधिकरण द्वारा यह तैयार किया गया है, यह उसके कार्य क्षेत्र से बाहर है, और

(स) संवैधानिक उपबंधों के विरुद्ध हो।

42वें संशोधन अधिनियम 1976 में उच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा शक्ति को कम किया गया है। किसी भी केंद्रीय कानून की संवैधानिक व्याख्या पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार करने की मनाही कर दी गयी है। हालांकि 43वें संशोधन अधिनियम 1977 में फिर मूल स्थिति बहाल कर दी गई है।

तालिका 34.2 *उच्च न्यायालय से संबंधित अनुच्छेद, एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
214	राज्यों के लिए उच्च न्यायालय
215	उच्च न्यायालय अभिलेखों के न्यायालय के रूप में
216	उच्च न्यायालय का गठन
217	उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिए नियुक्ति तथा दशाएँ
218	उच्च न्यायालय में उच्चतम न्यायालय से संबंधित कतिपय प्रावधानों का लागू होना
219	उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का शपथ ग्रहण
220	स्थायी न्यायाधीश बहाल होने के बाद प्रैक्टिस पर प्रतिबंध
221	न्यायाधीशों का वेतन इत्यादि

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
222	किसी न्यायाधीश का एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण
223	कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति
224	अतिरिक्त एवं कार्यवाहक न्यायाधीशों की नियुक्ति
224ए	उच्च न्यायालयों में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति
225	उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार
226	कतिपय याचिकाएँ जारी करने की उच्च न्यायालयों की शक्ति
226ए	अनुच्छेद 226 के तहत केन्द्रीय अधिनियमों की संवैधानिक वैधता पर विचार नहीं किया जाना (निरस्त)
227	उच्च न्यायालय का सभी न्यायालयों पर अधीक्षण की शक्ति
228	उच्च न्यायालयों में कतिपय मामलों का स्थानांतरण
228ए	राज्य अधिनियमों की संवैधानिक वैधता से संबंधित प्रश्नों के विस्तारण के लिए विशेष प्रावधान (निरस्त)
229	पदाधिकारी तथा सेवक एवं उच्च न्यायालयों में व्यय
230	उच्च न्यायालयों में क्षेत्राधिकार संघीय क्षेत्रों तक विस्तार
231	दो या अधिक राज्यों के लिए एक साझे उच्च न्यायालय की स्थापना
232	व्याख्या (निरस्त)

संदर्भ सूची

1. भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम, 1861 के उपबंधों के तहत इन तीन उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई।
2. सन् 2000 में तीन नये राज्यों के गठन के बाद उच्च न्यायालयों की संख्या 18 से बढ़कर 21 हो गई। 2013 में तीन उत्तर-पूर्वी राज्यों-मणिपुर, मेघालय एवं त्रिपुरा में अलग उच्च न्यायालयों की स्थापना से उच्च न्यायालयों की संख्या 21 से बढ़कर 24 हो गई है।
3. *उच्चतम न्यायालय वकील* बनाम *भारत संघ* (1993)राज्यों-मणिपुर, मेघालय तथा त्रिपुरा में 2013 में अलग उच्च न्यायालयों की स्थापना से उच्च न्यायालयों की संख्या 21 से बढ़कर 24 हो गई है।
4. राष्ट्रपति द्वारा पुन: संदर्भित से संबंधित (1998)। राष्ट्रपति ने 1993 के मामले में वर्णित भारत के मुख्य न्यायधीश द्वारा अपनाई जाने वाली परामर्श प्रक्रिया के संबंध में कुछ संदेहों पर उच्चतम न्यायालय से (अनुच्छेद 143 के तहत) उसका विचार मांगा।

4a. सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकार्ड एसोसिएशन एवं अन्य बनाम भारतीय संघ (2015)

5. 15वें संशोधन अधिनियम, 1963 द्वारा सेवानिवृत्ति की आयु 60 से 62 वर्ष कर दी गई।
6. 1950 में उनका वेतन प्रतिमाह क्रमश: 4000 एवं 3500 तय किया गया। 1986 में उनका वेतन क्रमश: 9000 और 8000 तय किया गया। 1998 में उनका वेतन बढ़ाकर क्रमश: 30,000 रूपये प्रतिमाह एवं 26,000 हजार रूपये प्रतिमाह कर दिया गया।
7. आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) ने न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग कर दिया गया। (राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत के तहत अनुच्छेद 50)।
8. दूसरा उपबंध 15वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1963 के तहत जोड़ा गया।

9. *एल. चंद्र कुमार* बनाम *भारत संघ* (1997)।
10. मूलतः इसे असम उच्च न्यायालय के नाम से जाना जाता था, जिसे 1971 में गुवाहाटी उच्च न्यायालय का नाम दिया गया।
11. मूलतः इसे मैसूर उच्च न्यायालय के नाम से जाना जाता था, जिसे 1973 में कर्नाटक उच्च न्यायालय का नाम दिया गया।
12. मूलतः इसे पंजाब उच्च न्यायालय के नाम से जाना जाता था, जिसे 1966 में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय का नाम दिया गया।
13. बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के नाम बदलकर क्रमशः मुंबई, कोलकाता और चेन्नई कर दिए गए। लेकिन इनके उच्च न्यायालयों के नाम नहीं बदले गए।
14. 2013 में तीन उत्तर-पूर्वी राज्यों-मणिपुर, मेघालय एवं त्रिपुरा में अलग-अलग उच्च न्यायालयों का गठन किया गया।
15. उत्तर-पूर्वी क्षेत्र (पुनर्गठन) तथा अन्य संबंधित कानून (संशोधन) अधिनियम 2012 द्वारा स्थापित
16. यद्यपि उड़ीसा का नाम बदलकर ओडिशा कर दिया गया है किन्तु उड़ीसा उच्च न्यायालय का नाम नहीं बदला है।
17. आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का नया नामकरण हुआ-हैदराबाद उच्च न्यायालय (अर्थात् हैदराबाद में हाई कोर्ट का ज्यूडिकेचर)